॥ समपर्ण ॥

—:o:—

यह

पुस्तक श्रीमान् राजा

लाल नागेन्द्र शाह

ज़मींदार साहब

बिन्द्रा नवागढ़

के

कर कमलों

में सादर

समर्पित

कीगई

है.

॥ भूमिका ॥

पाठक गण ! आपने जो मेरे प्रथम परिश्रम का इतना आदर किया, उसी का यह परिणाम है कि आज फिरभी मैं आप के सामने उपस्थित हूं।

हिन्दीभाषा में श्रीयुत पं. जनार्दन झा के "चरित्र गठन" को छोड़ आज तक ऐसी कोई दूसरी पुस्तक देखने में नहीं आई जिस के द्वारा बालक-गण अपने आचरण को भली-भांति सुधार सकें। इस अभाव को दूर करने के लिये मैंने इस पुस्तक की रचना की है। इस में जो विषय रक्खे गए हैं उन की उपयोगिता पढ़ने से ही विदित होगी; और इन की रोचकता बढ़ाने के लिये साथ२ छोटी२ कहानियां भी शामिल कर दी गई हैं। यदि आपको इस से कुछभी लाभ हुआ तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा।

केशवानन्द चौबे.

॥ वक्तव्य ॥

भैया-लो; अब तुम में वह उदासी नहीं झलकती, जो कुछ समय पहले हमने पाई थी। पहला खिलौना हमने जो तुम्हें दिया था उससे तुम्हारा हृदय सन्तुष्ट हुआ है। लो! यह दूसरा भी लो। इस में जो चमक है वह तुम्हें आरसी का काम देगी। इसी से तुम अपने मन के भले बुरे विचारों को जानोगे और यही तुम्हारी संकट आपड़ने पर सहायता देगा। देखो! इसे सदैव अपने पास रखना। तुम्हारा कल्याण होगा।

केशव.

॥ सूचीपत्र ॥

कर्तव्य कर्म.

हम "बालजीवन" में इस विषय पर वहुत कुछ कह आये हैं। परन्तु यह विषय इतना गंभीर है कि इसकी पूर्ति उस छोटी सी पुस्तक में नहीं हो सक्ती। इसलिये इसका उल्लेख फिर भी यहां किया जाता है।

भगवत् गीता में कहा है:-कि मनुष्य तथा प्राणी मात्र को अपना कर्तव्य अवश्य करना चाहिये। कर्तव्य इस भरोसे पर न किया जावे कि हमें इसके सम्पादन करने से कुछ पुरस्कार चाहे धन अथवा अन्य किसी रूप में मिलेगा, परन्तु यह विचार लेना चाहिये कि हम जो कुछ कर्म करते हैं वही हमारा कर्तव्य है; चाहे इसमें हमें लाभ न भी हो, परन्तु उसको पूर्ण करना ही हमारा कर्तव्य अथवा धर्म है। कर्तव्य निवाहने में हमें भूत, अथवा भविष्यत का ध्यान रखना इतना जरूरी है जितना कि हमें अपनी वर्तमान स्थिति का।

कर्तव्य करना सीखो और तुम्हें इसके निबाहने की बान पड़जावेगी। इसी प्रकार यह बान (आदत) तुम्हारे आचरण के सुधारने में बहुत कुछ सहायता पहुंचावेगी। क्यों कि आचरण ही मनुष्य अथवा प्राणीमात्र के भाल के अमेट अक्षर हैं। और यही हमारे सुख दुःख का मूल्य कारण है। हमारे कर्म सदैव हमारे साथ छाया के तुल्य रहते हैं और और वेही हमारी स्थिति को बिगाड़ने अथवा सुधारने में लगे रहते हैं। जिस प्रकार गुलाब के जड़ की मिट्टी भी उसके साथ रहने से सुगन्ध-मय हो जाती है उसी प्रकार उच्च कर्म करने से तथा अपना कर्तव्य यथोचित रूप से सम्पादन करने से मनुष्य अपने कुल की मर्य्यादा बढ़ा सक्ता है चाहे उसने नीच कुल में जन्म क्यों न लिया हो। मनुष्य जब इस संसार को छोड़ जाता है तो लोग बहुधा यही पूछा करते हैं कि अमुक (फलाना) आदमी कितनी सम्पति छोड़ मरा है? परंतु स्वर्गीय दूत यही पूछेंगे:— कि तुम यहां आने पूर्व पृथ्वी पर कौन२ से कर्म कर आये हो। इसलिये हमें ध्यान रहे कि हम सदैव अच्छे कर्म किया करें।

मनुष्य बहुधा ऐसे पदार्थों की चाह करने लगता है जो उसे प्राप्त नहीं हो सके, इस प्रकार वह भ्रम-वश हो ऐसे कार्य्य कर बैठता है जिन्हें उसे न करना चाहिये। इसलिये हमें उचित है कि हम अपने चित्त को सदैव स्थिर रक्खें और किसी कार्य्य के करने में उतावली न करें। किसी कार्य्य के आरम्भ करने के पूर्व हमें उसकी भलाई या बुराई का विचार कर लेना चाहिये। मुस्तैदी और सावधानी से किसी कार्य्य को करो, फिर उस के परिणाम की बाट जोहो। हमें किसी भी कार्य्य को तुच्छ न लेखना चाहिये। कभी२ जिन्हें हम तुच्छ समझते हैं, इन के सम्पादन करने में हमें बड़ी कठिनाई उठाना पड़ती है। इस लिये हमें चाहिये कि हम छोटे से छोटे कार्य्य को भी सदैव गुरुतर समझ सावधानी से सम्पादन करने की चेष्टा करें।

हम यह भली भाँति जानते हैं कि जितना समय हमें पलक मारने में लगता है उसे 'पल' कहते हैं परन्तु इनकी अधिकता होने पर मिनट, घंटों और बरसों की गणना होने

लगती है। इसी प्रकार जब हम छोटे२ कार्य्य यथोचित रूप से करने लगेंगे तो इन की अधिकता होने पर भी हम में कठिन से कठिन कार्य्य को भी यथोचित रूप से सम्पादन करने का साहस हो जावेगा। हमें ऐसे कार्य्य जिन्हें हम दूसरों पर प्रकट नहीं किया चाहते न करना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि दूसरे हमारे साथ अच्छा बरताव करें तो हमें उचित है कि हमभी उन के साथ भलाई किया करें।

कर्म तीन प्रकार के हैं उत्तम, मध्यम और कनिष्ट। परोपकार युक्त कार्य्य को हम उत्तम कह सके हैं। मध्यम वे हैं जो परोपकार युक्त होने पर भी स्वार्थता से लिप्त हों। कनिष्ट वे हैं जिनमें कपट का लेश पाया जावे। कार्य्य के उत्तम रीति से सम्पादन होने से हमें सन्तुष्ट न हो रहना चाहिये; परन्तु किसी कार्य्य को हाथ में लेने के पूर्व हमें यह देखना चाहिये कि यह किस श्रेणी का है। हमें ऐसे कार्य्य न करना चाहिये जो स्वार्थता और कपट से लिप्त हों और जिन के सम्पादन करने में आपस की सुहृदयता में बाधा पड़ने की आशंका हो। हम जिस

कार्य्य को दूसरों से कराया चाहते हैं उचित है कि उसे हम स्वयं, कर लें।

किसी कार्य्य को दूसरों पर प्रकट करने की अपेक्षा उचित है कि हम उसे पहले पूर्ण करलें क्योंकि बुद्धिमान लोग जब तक अपने कार्य्य को पूर्ण नहीं कर लेते दूसरों पर प्रकट नहीं करते। कार्य्य को शब्दों से कहने की अपेक्षा उसे पूरी रीति से समाप्त कर लेने ही से उसकी अधिकता स्पष्ट रूप से समझ में आजाती है। मनुष्य जो बड़ी२ बातें किया करते हैं और वास्तव में कुछ भी नहीं करते वे केवल घास के बागीचों के तुल्य हैं। इसलिये हमें चाहिये कि किसी कार्य्य को दूसरों पर प्रकट करने की अपेक्षा उसे उचित रूप से सम्पादन करें।

किसी शहर में एक मनुष्य था उसके तीन मित्र थे। उनमें से वह अपने दो मित्रों को अधिक प्रेम किया करता परन्तु उसका जो तीसरा मित्र था उसे वह घृणा किया करता था। एक दिन न्यायाधीश ने इसे अपनी अदालत में

बुलाभेजा। इसने चलते समय अपने इष्ट मित्रों से पूछा कि क्या आप हमारे साथ गवाही देने के लिये न्यायालय में चलेंगे ? यह सुन पहले ने किसी अन्य कार्य्य का बहाना कर इस से अदालत तक जाने की क्षमा मांगी।

दूसरा मित्र इसके साथ कचहरी तक गया पर न्यायाधीश के डर से वापस चला आया परन्तु इसका वह मित्र जिस पर इसका तनिक भी विश्वास नहीं था इसके साथ गया और अदालत में गवाही दे इसे मुक्त करा लाया।

इसी प्रकार पृथ्वी पर हमारे भी तीन मित्र हैं। पहला-सम्पति जो हमारे मरने पर हमें अकेला छोड़ देती है। दूसरे हमारे बन्धु-बान्धव जो श्मशान तक ही हमारा साथ देते हैं परन्तु हमारा तीसरा मित्र-हमारे शुभ कर्म ही हैं जो हमारे साथ जाते हैं और ईश्वर के यहां हमारे भले बुरे कर्मों की साक्षी देते और हमें मुक्त कराते हैं। सादी साहब ने अपनी गुलिस्ताँ में लिखा है कि बेटा क़यामत के दिन ईश्वर तुम से यही पूछेगा कि संसार में जाकर

तुम ने क्या लाभ उठाया ? तुमने किसी का उपकार किया अथवा नहीं ? तुमने हमारे वाक्यों को माना कि नहीं ? बरन यह न पूछेगा कि तुम किसके लड़के हो; तुम उच्च कुल के हो अथवा नीच कुल के ।

इसलिये हमें चाहिये कि हम इस लोक में शुभ कर्म करें । क्योंकि हम जानते हैं कि जो चोरी करता है उसे दंड अवश्य मिलता है । जो परिश्रम से अपना कार्य्य करता है उसे सफलता अवश्य प्राप्त होती है । जो कुमार्ग-गामी होता है उसे अनेक कष्ट और रोगों का सामना करना पड़ता है—इस से हमें यही ज्ञात होता है कि यदि हम शुभ कर्म करेंगे तो हमें उसका अच्छा ही फल मिलेगा और अशुभ कर्मों का बुरा ही परिणाम होगा । इस लिये हमें उचित है कि हमें चाहिये कि यदि हम भलाई चाहते हैं तो शुभ कर्म करें और परलोक के लिये इन्हें अपना साथी बनालें और अपनी भावी सन्तान के लिये सुलभ मार्ग छोड़ जाँय । शुभ कर्म को ही योग्यता से सम्पादन करने में हमारी जय रहेगी ॥

जो क्रोध को हृदय से,

हैं मान देते ।

पाते सदैव दुःख वे,

अपमान लेते ॥

केशव.

क्रोध.

जब मनुष्य किसी कारण से अधिक घमण्डी हो जाता है तब क्रोध भी अपना प्रभाव इसपर जमाने लगता है। यह एक प्रकार का उन्माद है। इस के वश हो मनुष्य ऐसे कर्म कर बैठता है जिन के लिये उसे पश्चाताप करना पड़ता है। इस लिये हमें उचित है कि हम अपने स्वभाव को सरल बनावें और अपनी इन्द्रियों को वश में रक्खें। क्रोधी मनुष्य अन्धा हो जाता है और अनाप शनाप जो कुछ आता कह बैठता है। इस लिये हमे चाहिये कि हम ऐसे मनुष्यों की बातों का बुरा न मानें।

क्रोध विवेक का कट्टर शत्रु है। यह एक ऐसी आंधी है जिस के झपेट में आकर हम जो चाहे सो कर बैठते हैं और ऐसे अवसर पर हमें किसी की सलाह काम नहीं देती वरन हमारे क्रोध कोऽधिक प्रचण्ड कर देती है। यह एक ऐसा पदार्थ है जो हमारे चित्त को क्षण२ पर दुःखित कर देता है। यदि हम छोटी२ बातों पर क्रोध प्रकट करें तो लोग हमें

हँसने लगेंगे। क्रोध से मनुष्य बहुत सी ऐसी बातें कह बैठता है जो उसे दूसरों से नहीं कहनी चाहिये अथवा गुप्त रखनी चाहिये। क्रोध पागल पने की हालत सेभी कहीं बढ़ कर है। इस में सन्देह नहीं कि क्रोध-वश आकर मनुष्य अपने हृदय के सच्चे उद्गार प्रकट कर देता है परन्तु यह सर्वथा उचित नहीं। क्रोधी मनुष्य को दुःख की कमी नहीं रहती। जब क्रोध का हृदय पर भली प्रकार से सत्व हो जाता है तब वह पदार्थों के यथार्थ रूप को पलट देता है और ऐसी दशा में हमें अमृत भी विष जान पड़ता है। हम इस के वश हो बहरे हो जाते हैं। जब इस के वशीभूत हो जाते हैं और अपने किये का पश्चाताप करने लगते हैं तो इस दशा में हमें आनंद भी दुःख-मय जान पड़ता है।

यह एक प्रकार का व्यसन है जिससे हमारे पेट की दशा बिगड़ जाती है। मुख पीला, आंखें लाल और डरावनी, और वाणी भारी और कठोर हो जाती है। इस से हमें लाभ ही क्या ? इस से वश हो हमारे बन्धु-बान्धव भी हमें शत्रु से जान पड़ते हैं। क्रोध ही पापों की मुख्य जड़ है। एक दिन

किसी ने तत्ववेत्ता मुहम्मद साहब से कहा कि कृपा कर आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये कि मुझे शान्ति मिले। मुहम्मद साहब ने कहा "तुम क्रोध करना छोड़ दो और तुम्हें शान्ति का मार्ग सुगम हो जावेगा"। यदि हम नित्य की छोटी२ बातों पर क्रोध करना छोड़ दें तो निःसन्देह हम इस की मात्रा कम कर सक्ते हैं। हमें प्रतिदिन के व्योहार में यह देखना चाहिये कि आज हम कितने बार नाराज हुए। यदि हमने एक मिनट भी क्रोध शान्त करलिया तो निःसन्देह हम इस अभ्यास के कारण अपने दिन, घंटे और वर्ष सुख से क्रोध रहित व्यतीत कर सक्ते हैं। यदि हम क्रोध वश हो किसी कार्य्य का आरम्भ करें तो उस कार्य्य को हम भलीभांति पूरा नहीं कर सकेंगे क्यों कि जब हम अपने आपे में नहीं रह सक्ते अर्थात् जब हम स्वयं अपनी इन्द्रियों का दमन नहीं कर सक्ते तो कब सम्भव है कि हम किसी कार्य्य को यथोचित रूप से पूरा कर सकेंगे।

यदि हमें राज्य की अभिलाषा है तो पहले हमें उचित है कि हम अपनी इच्छाओं पर राज्य करना सीखें। वह जो

अपने क्रोध को सर्वत्र शान्त रखता है एक वीर योद्धा से कहीं बढ़ कर है। वह जिसने अपनी इच्छाओं पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया है उस वीर से जिसने कई प्रदेश जीते हैं कहीं बढ़ कर है।

क्रोध दमन करने का एक सरल उपाय यह भी है कि पहले हम सोचें कि ईश्वर ने हमें तथा हमारे मित्रों कोभी इस संसार में जन्म दिया है। आँख, कान, नाक, त्वचा इत्यादि सब को एक ही दिये हैं। आत्मा भी सब की एकही हैं। वह चाहता है कि जिन्हें हमने जन्म दिया वे सब सुख से अपना काल यापन करें। फिर हमें कब उचित है कि हम क्रोधवश हो आप दुःखित हों और अपने पालक कोभी दुःखित करें। ईश्वर ने हमें मन दिया है इसलिये हमें चाहिये कि हम इसके सहारे अपनी इंद्रियों का दमन करें। प्रभु ने जो हमें इन्द्रियाँ दी हैं उन को हम बुरे कामों की ओर न जाने दें। इनके दमन करने का नम्रता भी एक शस्त्र है। इस के सहारे हम असह्य से असह्य दुःख को भी सहन कर सके हैं।

वह जो अपनी तकलीफों को नम्रता से सहन किये जाता है दुःखित नहीं रहता वरन वह अपने भावी कष्ट की किनारों को काटता जाता है और अपने जीवन मार्ग को सुलभ कर लेता है जिस से उसे फिर कभी कष्ट उठाना नहीं पड़ता

अमेरिका के "जिनीवा" नगर में एक तत्ववेत्ता "ऐवूरेट" नामक रहते थे। इन के यहां एक नौकरानी तीस वर्ष से काम करती थी। लोगों ने इन्हें इस पर नाराज होते कभी नहीं देखा और ये महात्मा अपनी सहन शीलता के लिये देशभर में प्रसिद्ध थे। नगर वासियों ने एक दिन इनकी परीक्षा लेनी चाही। और नौकरानी को लोभ देकर कहा कि तुम अपने स्वामी को हमें क्रोधित अवस्था में दिखलाओ। नौकरानी का प्रति दिन का यह कर्तव्य था कि वह संध्या समय घर जाने के पूर्व अपने स्वामी के बिछौने बिछा जाया करती। एक दिन इसने बिछौना करने में भूलकी और बिना बिछाये ही घर चली गई। जब "ऐवूरेट" अपने शयनागृह में गये उन्हें बिस्तर तितर बितर मिले। इसे देख वे दुःखित नहीं हुए वरन अपने

हाथों से उन्हें ठीक कर लेट रहे। भोर होतेही उन्हों ने अपनी नौकरानी से यह सब कहा। नौकरानी ने कहा महाराज मुझ से भूल हुई। यह सुन वे सन्तुष्ट हो रहे। परन्तु आश्चर्य की बात है कि दूसरे दिन आपने फिर यही भूल पाई। इस बार फिर भी नौकरानी ने कुछ बहाना किया और नमृता पूर्वक अपना अपराध क़बूल किया। पर जब तीसरे दिन उन्हें फिर भी ग़लती मिली तो उन्हों ने अपनी नौकरानी से कहा कि तुम ने आजभी हमारे बिस्तर नहीं किये। जान पड़ता है इस में तुह्मारा कुछ आशय अवश्य है। चिन्ता नहीं इतने दिनों में तुम्हारे बिस्तर न करने के कारण मैं स्वयं बिस्तर लगाना भलीभाँति सीख गया हूं। यह सुन नौकरानी इन के चरणों पर गिर पड़ी और अपने अपराध का कारण इन पर भली भांति कह सुनाया।

ईर्षा कभी किसी की,

करती नहीं भलाई।

ईर्षा.

———:o:———

नीच का आभूषण ईर्षा है । इसी में वे अपनी बड़ाई मानते हैं । ईर्षा-युक्त मनुष्य का जीवन सदैव दुःखित रहता है । वह अपने उन्नति के मार्ग को कंटक-मय बना लेता है । किसी विद्वान का मत है कि वह मनुष्य जो दूसरों को सुखी देख स्वयं दुःखित होता है और उनके गुणों को जिन तक-उस का पहुँचना कठिन है हलकी दृष्टि से देखता है और इस प्रकार वह अपनी अवनति की सामग्री इकट्ठी करता है । ईर्षा-युक्त मनुष्य सदैव उन की प्रशंसा किया करता है जिनपर वह अपना अधिकार जमा लेता है । जहाँ इस का राज्य है वहां सदैव दुष्कर्म हुआ करते हैं ।

ईर्षा और घृणा हमारे हृदय के घुन के कीड़े हैं जो सदैव हमारी अवनति में लगे रहते हैं । हम इन के वशी-भूत हो अपनी शारीरिक उन्नति नहीं कर सके ।

शुद्ध अन्तःकरण और निश्चल प्रेम हमारे हृदय के अमृत के कुन्ड हैं । इन से हमारा हृदय सदैव प्रभात के

समान निर्मल और प्रफुल्लित रहता है। ईर्षा-युक्त मनुष्य यदि ऐसे कुटुम्ब में रहे जहां उसे उन्नति के सिवाय और कुछभी न लख पड़े तो वह अवश्य ही उस बिच्छू के समान जो चहुँओर से अग्नि से घिरा हुआ हो घुटर कर मर जायगा। ईर्षा-युक्त मनुष्य को घुन के कीड़े के समान कभी फुरसत नहीं मिलती। वह सदैव दूसरों की बुराई किया करता और उन के ऐब (छिद्र) ढूंढ़ने में लगा रहता है।

ईर्षा-युक्त मनुष्य ऐसे अवसर परभी जब उसे आनन्द से रहना चाहिये अधिक दुःख पाता है और ऐसे पदार्थ जिन से दूसरों को अमित आनन्द और धैर्य प्राप्त होता है उसे असाध्य कष्ट पहुँचाते हैं।

यदि हम ऐसे लोगों की सच्ची अवस्था और उन के सद्गुणों को देख जिन की दूसरे लोग प्रशंसा किया करते हैं बुरा मान बैठें तो निःसन्देह हमारी अवस्था बड़ी मार्मिक हो जावेगी। ऐसा मनुष्य दूसरों के साथ अपना समय आनन्द से व्यतीत नहीं कर सक्ता। वह एक ऐसे जगत में रहता है जहाँ के लोग उसे त्यागने की चिन्ता में लगे रहते हैं

और अन्त को वह जन-समूह से विलग कर दिया जाता है। यदि ईर्षा क्रोध के समान क्षण२ पर प्रज्वलित होने लगे तो निःसन्देह वह ईर्षा करने वाले ही को नहीं वरन सारे संसार कोभी भस्मीभूत कर देगी। सांसारिक वस्तुओं में ईर्षा मनुष्य को विष तुल्य लेखनी चाहिये, जिस के कारण वह सुख से रहने की अपेक्षा सदैव तड़पा करता है।

हमें यह ध्यान रहे कि हम ईर्षा-युक्त मनुष्यों से कभी बुराई न करें ऐसा करने से हम उनके दुःख को अधिक कर देते हैं अथवा उन के दुख की मात्रा दूनी कर देते हैं। ऐसे मनुष्यों से बुराई करने अथवा अन इच्छा प्रकट करने से लाभही क्या ? जब मह भलीभांति जानते हैं कि उस ने अपने ईर्षा-युक्त स्वभाव कोही अपना शत्रु वना लिया है जो उसे नाश करने में सदैव तत्पर है।

ईर्षा बुरी वस्तु है। यह बहुधा एक ही दरजे के मनुष्यों में पाई जाती है। राजा, राजाओं से ईर्षा किया करते हैं न कि हम। इस से उचित है कि हम अपने से ऊँचे पद

वाले से ईर्षा कभी न करें। धनी; धनी से द्वेष किया करते हैं न कि भिखारी।

यह हम भली प्रकार जानते हैं कि खिलाड़ी; दूसरे खिलाड़ी से; कवि दूसरे कवि से; तथा शास्त्रज्ञ दूसरे शास्त्रज्ञ से ही ईर्षा किया करते हैं क्यों कि वे एक दूसरे से बढ़ कर अपनी मान मर्य्यादा चाहते हैं। लेकिन इसे हम नीच कोटि की ईर्षा या द्वेष नहीं कह सके। ईर्षा-युक्त मनुष्य से बचने का एक यही उपाय है कि सदैव उससे दूर रहे। महाभारत में एक जगह लिखा है कि उत्तम पुरुष वे हैं जो अपनी अवनति की दशा में भी दूसरों की भलाई अथवा उन्नति में आनंद मनाते हैं।

यदि हमारे मानसिक सुख दुःख हमारे भाल पर स्पष्ट रूप से लिख दिये जांय तो हमें यह देख लेना चाहिये कि कितने जो हमसे ईर्षा करते हैं इन्हें बांट लेवेंगे। अर्थात् कोई भी नहीं बांटेगा।

प्रत्येक मनुष्य चाहे कितना भी वाह्य आडम्बर से हमें सुखी क्यों न लख पड़े, परन्तु हमें समझ रखना चाहिये

कि उसकी मानसिक अवस्था ठीक नहीं क्योंकि हम किसी की मानसिक चिन्ताओं को जान नहीं सके। जब हम किसी के दुःख बांट नहीं सके तो हमें कब अधिकार है कि हम दूसरों को शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट दें। यदि दस मनुष्यों के मानसिक दुःखों का ढेर एक जगह लगा दिया जावे तो तुम उसमें से आधा या तिहाई हिस्सा लेना न पसन्द करोगे। इस लिये हमें उचित है कि हम अपने भाई बन्धुओं तथा इष्ट मित्रों से कभी ईर्षा न करें क्योंकि हम उनके मानसिक दुःख का अनुभव नहीं कर सके। हमें अपने दुःखों को धैर्य्यता से सहन किये जाना चाहिये और स्वयं दुःखित जान दूसरों से कभी द्वेष न करना चाहिये। न जाने कब हमारे बन्धु-बान्धव तथा इष्ट मित्र हमारी सहायता कर बैठें।

सहन-शीलता.

———:o:———

बदला लेने और दाँव भँजाने की आदत मनुष्य को निर्दयी और गवाँर बना देती है। बदला लेने वाला शत्रु से कभी कम नहीं है। यह एक ऐसा दुर्गुण है जिस के कारण हम अनायास दूसरों को अपना शत्रु बना लेते हैं। यह मनुष्य जो दूसरों के अपराधों को क्षमा-कर देता है या स्वयं दुख पाने परभी उनपर ध्यान नहीं देता बदला लेने वालों से कहीं बढ़ कर है। महात्मा तुकाराम का मत है कि ऐसे मनुष्यों का जिन के पास क्षमा ही एक शस्त्र है बदला लेने वाला कुछभी बिगाड़ नहीं करसक्ता क्योंकि यदि हम ऐसे स्थान में अग्नि प्रज्वालित करें जहां घास का नाम नहो तो दूर तक फैलने के बदले अग्नि वहीं बुझ रहेगी। इस लिये हमें उचित है कि हम क्षमा को अपने हृदय में एक उच्च स्थान दे रक्खें। क्षमा करने वाला एक वीर पुरुष सेभी बढ़ कर है। यह सद्गुणों में सब से श्रेष्ठ गुण है जिस के कारण मनुष्य कभी दुखी नहीं रह सक्ता इसलिये हमें इस के प्राप्त करने की गाढ़

इच्छा होनी चाहिये। वीर वही है जिस ने इस गुण को प्राप्त कर लिया हो। यह एक ऐसा गुण है जिस के कारण हमारा क्रोध अनायास ठंढा पड़जाता है। सहन-शीलता के अभाव कारण कई कुटुम्ब नाश हो चुके हैं। कई विद्यार्थियों का जीवन नष्ट हो चुका है। यह एक ऐसा शस्त्र है कि जिस के कारण ईर्षा, क्रोध इत्यादि हमारा कुछभी विगाड़ नहीं कर सके। यह कब सम्भव है कि ईश्वर हमारे अपराधों को क्षमा करेगा जबकि हम दूसरों के अपराधों को क्षमा नहीं करते।

उदार बनो और दूसरेभी तुम्हारे साथ उदारता का बर्ताव करेंगे। अपने शत्रुओं को प्यार करो; जो तुम्हें कोसते हैं उन्हें शुभ-आशीरबाद दो; जो तुम्हें घृणा करते हैं उन्हें तुम प्यार करो और जो तुम्हारी बुराई (बदनामी) करते हैं उन के लिये तुम भलाई करो और सदैव ईश्वर से सद्बुद्धि मांगो। तात्पर्य यह है कि तुम अपने सहन-शीलता और क्षमा के पद को अधिक ऊँचा बना लो। जब तुम दूसरों को कष्ट पहुँचाना चाहते हो तब उचित है कि तुम स्वयं पहले अपने कष्ट का अनुभव करलो। वह जो बुराई

के बदले भलाई कराता है अपने पद को ऊँचाही नहीं बनाता बरन बुराई करने वाले पर अपना पूरा अधिकार जमा लेता है। भलाई के पलटे भलाई करना साधारण बात है लेकिन बुराई के बदले भलाई करना असाधारण कार्य गिना जा सक्ता है। हम यह भली प्रकार जानते हैं कि मनुष्य जो असाधारण बुद्धि का है अथवा जो असाधारण कार्य्य करता है लोग उस की बड़ाई किया करते हैं। किसी समय चीन देश में दुश्मनों ने बलवा किया। इस की खबर बादशाह को मिली। बादशाह ने अपने ओहदेदारों से कहा कि तुम मेरे साथ चलो और मैं अभी शत्रुओं का नाश किये देता हूं। बादशाह अपने आदमियों के साथ उस स्थल पर पहुँचा जहाँ कि बलवा हो रहा था। इस के वहाँ पहुँचने पर बागी लोग तुरन्त इसकी शरण आये। बादशाह ने इन्हें दंड देने के बदले गाँव दिये और बड़ी नम्रता से इन्हें अपने आधीन कर लिया। यह देख किसी अफ़सर ने बाद-शाह से कहा कि आप ने कहा था कि हम अभी शत्रुओं का नाश करेंगे परन्तु नाश करने या दंड देने के बदले आप ने इन पर दया का बरताव किया क्या इसी तरह

आप अपने वचन को पूरा किया करते हैं। बादशाह ने कहा—शत्रुओं को दमन करने के लिये क्षमा और नम्रता ही दो बड़े शस्त्र हैं हमारा इन्हे नाश करने का यही अभिप्राय था कि हम इन्हे नम्रता से अपने कब्जे में कर लें। और यथार्थ में अब ये हमारे शत्रु नहीं रहे। इस से हम यह जान सके हैं कि जिस के हृदय में क्षमा और सहन शीलता है वह अपने शत्रुओं को आगे नहीं बढ़ने देता। इस का एक और भी उदाहरण है।

पूर्व काल में एक राजा थे। इन्हें लोग "धीरज स्वरूप" कहा करते थे। इन्हें इन के निकट-वर्त्ती राज्य के अधिपति ब्रह्मदत्त ने अपने पराक्रम से राज्य से च्युत कर दिया। धीरज स्वरूप अपनी स्त्री सहित साधू हो बनारस में रहने लगे। बनारस ब्रह्मदत्त की राजधानी थी। यहां इनकी रानी ने एक पुत्र रत्न प्रसव किया। लोग इन्हें (इस बालक) को संकट-स्वरूप कहने लगे क्यों कि इन का जन्म ऐसे संकट क समय हुआ था। ईश्वर की कृपा से यह बालक सर्वगुण सम्पन्न निकला। एक दिन लोगों ने धीरज-स्वरूप के रहने का स्थान देख लिया और उन्होंने जाकर ब्रह्मदत्त को इस की

खबर दी। इस पर राजा ने इन्हें स्त्री सहित सड़कों पर घुमाने की आज्ञा दी और सिपाहियों से कहा कि इन्हें शहर के बाहर निर्जन स्थान में ले जाकर प्रत्येक के चार२ टुकड़े कर मुझे दिखाओ। सिपाही लोग इन्हें तुरन्त जंगल में ले गए और इन्हें अधिक कष्ट देने लगे। बालक संकट स्वरूप यह सब देखता रहा और अप ने पिता के पास गया। पिताने इसे अपनी गोद में लेकर कहा " बेटा मनुष्य को अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है इस लिये उसे उचित है कि वह अपने इष्ट मित्रों से धैर्य पूर्वक सच्चा बर्ताव करे और शत्रुता को अधिक न बढ़ने देवे या ज्यादा दिन न रहने देवे और अपने मित्रों काभी एकाएक विश्वास न करले; । इस का पिता इतना ही कहने पाया था कि दुष्टोंने इसे अलग कर दिया और इस के माता को कठोर कृपाण से मारडाला । बालक संकट-स्वरूप कुछ दूर बैठा रहा। जब दुष्टों ने अपना कार्य कर लिया तब संकट-स्वरूप ने इन्हें अपने पास बुलाया और इन्हें किसी प्रकार मदिरा पिलाई। मदिरा से उन्मत्त हो रक्षकगण सो रहे और बालक ने अपने माता पिता के शव को जला कर प्रदक्षिणा

की और जंगल की ओर चला गया। जंगल में जा संकट-स्वरूप रोया, पीटा और जब धीरज हुआ वह जलाशय के पास गया और मुख प्रक्षालन कर शहर की ओर रवाना हुआ। शहर में आकर यह राजा के यहां महावत का काम करने लगा। परन्तु ब्रह्मदत्त ने इस के गायन पर मुग्ध हो इसे अपने दरबार में प्रतिष्ठित पद दिया। अब दोनों में मित्रता अधिक बढ़ गई। किसी दिन दोनों जंगल में शिकार खेलने अकेले ही गये। राजा धूप के कारण थकित हो अपने मित्र से कुछ परामर्श कर एक वृक्ष के नीचे अपने मित्र की गोद में सिर रख सोरहे। जब राजा प्रगाढ़ निद्रा में थे संकट-स्वरूप ने सोचा कि इस ने जो आज हमारा मित्र है, हमारे माता पिता का राज्य ले सम्पति हीन कर देश से निकाल उन्हें मरवाडाला और यदि मैं अभी चाहूं तो इसे मारडाल सक्ता हूं इतना सोच कर संकट-स्वरूप ने म्यान से तलवार निकाली। ठीक इसी समय इसे अपने पिता के बचनों का स्मरण हो आया और इसने अपनी तलवार फिर म्यान में रखली। जब ब्रह्मदत्त जागा उसने कहा मित्र मैं अभी प्रगाढ़ निन्द्रा में था लेकिन मैंने जो अभी स्वप्न

देखा उस से मेरी नींद उचट गई और मुझ में अब वह साहस नहीं कि मैं अपना स्वप्न तुमसे कह सकूं। संकट-स्वरूप के आग्रह करने पर सब कह सुनाया और यहभी कहा कि मैंने तुम्हें तलवार लिये हुए देखा है। इतना सुनते ही संकट-स्वरूप ने अपनी कुशल न समझ ब्रह्मदत्त का सिर पकड़ लिया और उसे मारना चाहा और कहा कि मैं धीरज स्वरूप का पुत्र हूं। तुमने हमारे पिता को देश से निकाल मरवा डाला और अब तुम्हारी कुशल नहीं है। इस बार ब्रह्मदत्त बालक के चरणों पर गिर पड़ा और दया मांगी। संकट-स्वरूपभी चतुर था उसने इससे तीन बार प्रण कराया। दोनों ने आपस में एक दूसरे के राजी हो जाने पर जीवन दानदिया। फिर ब्रह्मदत्त ने पूछा—" संकट-स्वरूप तुम्हारे पिता ने मरती बार तुम से क्या कहा"? संकट-स्वरूप ने कहा, मेरे पिता ने मुझसे चार बातें कहीं। पहली यह-कि मनुष्य को चाहिये कि वह शत्रुता का शीघ्र ही अन्त करे अर्थात किसी के साथ शत्रुता अधिक दिन तक न बढ़ने देवे। दूसरी यह कि-शत्रुओं का दमन करना ही हमारा परम धर्म है पर ध्यान रहे कि इस के सम्पादन

के लिये क्षमा ही एक शस्त्र है। यह सुन ब्रह्मदत्त इस से अधिक प्रसन्न हुआ और अपने अपराध की क्षमा मांगी। फिर वापस आनेपर जो कुछ इस के पिता की सम्पाति थी इसे देदी। और अपनी पुत्री का इस के साथ विवाह कर इसे विदा किया। इस लिये हमें चाहिये कि अपने प्रति दिन के व्यवहार में क्षमा का सदैव ध्यान रक्खें और किसी के कहने पर एकाएक विश्वास न करलें। यद्यपि क्षमा करना न्यायाधीश, राजा, और ईश्वर काही काम है। पर यदि तुम उच्चपद के अधिकारी होना चाहते हो और लोक प्रिय बनाने की अभि लाषा है तो क्षमा करना सीखो और कठोरता तुन्हारे हृदय से जाती रहेगी।

— आशा —

चांहे बिकट भी दुःख हो,
आशा कभी मत छोड़ना ।
निज कार्य के उद्योग में,
मुखभी कभी मत मोड़ना ॥

महेश्वरप्रसाद.

— आशा —

———:o:———

हम "बाल-जीवन" में इस विषय पर बहुत कुछ कह आये हैं लेकिन यहां पर इस का उल्लेख करदेना और भी लाभदायक है। सन्तप्त हृदय को सन्तोष देने वाली एक आशा ही है। यह एक ऐसी वस्तु है जो क़ैदी को भी स्वतंत्रता प्रदान कराती है और कुटुम्ब रहित को भी क्षणमात्र के लिये सुख का अनुभव कराती है। आशा हमारे जीवन की औषधि है।

मनुष्य जिन्होंने अपना जीवन नष्ट कर लिया है और जो जन-समूह से अलग कर दिये गये हैं इसके सहारे अपने कष्ट को भूले रहते हैं। जिस प्रकार हम राग, रागनियों को सुन कर आल्हादित होते हैं उसी प्रकार आशा के सहारे हम अपने दुःखों को भूले रहते और सदैव प्रसन्न रहते हैं।

जन्म से ही हमारा इस से सम्बन्ध है और जब तक हम जीवित हैं यह अपना प्रभाव हम पर जमाये रहती है।

और यही हमारे जविन को गौरव-युत बना देती है। इस के सहारे हमारी सदैव भलाई हुआ करती है। इसलिये हमें उचित है कि हम इसे कभी न त्यागें। दुःख सहने और पश्चाताप करने की अपेक्षा आशा रखना ही हमारे सुखों का मूल कारण है। इस के सहारे बड़े २ महात्माओं ने ईश्वर के पद का अनुभव कर लिया है और ग़रीब से ग़रीब भी राजा हो गये हैं। आशा हमारी वर्तमान चिन्ताओं को मिटाती और हमारे हृदय में उच्च विचार पैदा कराती है॥

किसी भी पदार्थ का अनुभव हम इस के सहारे कर सक्ते हैं परन्तु उस की प्राप्ति के लिये हमें परिश्रम अवश्य करना चाहिये। बिना परिश्रम के आशा करना निरर्थक है। अंग्रेज विद्वान 'ऐडीसन' का मत है—कि ऐसे पदार्थ के पाने की इच्छा करना जिसके प्राप्त करने से हमें क्या फल मिलेगा, हम नहीं जानते, सुख के बदले हमारे दुःख को और अधिक बढ़ाती है। समुद्र के किनारे जहाज़ों के लिये जो 'प्रकाश-स्तम्भ' बनाये जाते हैं आशा इनसे भी कहीं बढ़ कर है। यह एक बड़े तारे के

समान है जो हमें दुःख के समय पथ-दर्शक का काम देता है। जिस प्रकार प्रकाश-स्तम्भ के कारण भूले भटके जहाज किनारे पर आ लगते हैं उसी प्रकार आशा भी हमें जीवन पर्यंत प्रकाश-स्तम्भ का काम देती है और हमारे सुख के मार्ग को बताती है ॥

एक बार प्रतापी अलैकजैन्डर से किसी ने पूछा कि आपने अपना सब धन और कीमती रत्न दूसरों को देने के सिवाय अपने लिये कौनसा धन बचा रक्खा है। बादशाह ने कहा " मैंने आशा को ही जिसके सहारे हमारे बड़े २ कार्य आसानी से हल हो जाते हैं धन स्वरूप रख छोड़ा है। यथार्थ में मनुष्य इसके सहारे धीरज रखे हुए अपने कार्य में कटिबद्ध रहता है और अन्त को सफलता उसे अवश्य प्राप्त होती है। इस विषय की एक कविता स्वदेश-बान्धव में प्रकाशित हुई थी और जिसकी प्रशंसा मर्य्यादा ने भी की थी पाठकों के लिये उद्धृत किये देता हूं।

[१]

हे आश ? इस जगत् में;
तेरा प्रभाव छाया ।
दुखियों का कष्ट तूने;
इक आन में मिटाया ॥

[२]

प्रति-याम ठोकरें जो,
सहते थे दूसरों की ।
रखते सदा छिपा कर,
वे बात अपने जी की ॥

[३]

करना टहल सबों की,
जीवन का लक्ष जाना ।
धीरज को अपने मन का,
मनका सहाय्य माना ॥

[४]

जीवन जिन्होंने अपना,
कुम्हला गया है जाना ।
तेरा विचार कर फिर,
दिल में यही है ठाना ॥

[५]

मरते भी यदि रहेंगे,
सत्-पथ से ना हटेंगे ।
कर के दिखा हि देंगे,
जो इक बार ठान लेंगे ॥

[६]

देखो इन्हीं के मग को,
कैसा सुगम बनाया ।
कंटक जहाँ थे पहले,
फूलों का पथ बिछाया ॥

[७]

धन के कुबेर होकर,
करते थे चोचले जो।
अपने समान जग में,
लखते नहीं किसी को॥

[८]

सुख की घड़ी जिन्हें थी,
उन की है दुख की बारी।
'केशव' सदाहि दिन ये,
फिरते हैं बारी बारी॥

[६]

तिस पर भी आश तूने,
इन पर दया दिखाई।
गुनते नहीं गुनी जन,
ढीठों की ढीठताई॥

[१०]

हे आश ? तू है देवी,
दुखियों की तू दवा है ।
यम-फाँस में पड़े जो,
उन की भी तू दवा है ॥

[११]

ऐसा बिचार कर तुम,
धीरज को खो न बैठो ।
एक आस कोहि अपना,
सच्चा सुमित्र समझो ॥

[१२]

फिर जग के काम सारे,
इक आन में बनेंगे ।
सुख से सदा रहेंगे,
दुख का न नाम लेंगे ॥

निःसंन्देह हमारे चित्त की प्रसन्नता के लिये यह औषधि का काम देती है। जिस प्रकार चन्द्र और तारे रात्रि के तिमिर का नाश करते हैं। सूर्य जिस प्रकार उदय होते ही आकाश को निर्मल कर देता है उसी प्रकार आशा भी हमारे दुख रूपी बादलों के समूह का नाश कर देती है और हमारे मन को आकाश वत् निर्मल बना देती है। प्रातःकाल की ओस जिस प्रकार अधखिले फूलों को अमृत का पान कराती है उसी प्रकार आशा भी हमारे मुरझाये हुए चित्त में प्रसन्नता संचार करती है॥

समय किसी का एकसा नहीं रहता। जो आज सुखी है उसे हम कल दुःखी पाते हैं। दुःख सुख का सामना हर किसी को करना ही पड़ता है॥

इसालिये हमें उचित है कि हम कभी निराश न हों और धैर्यता-पूर्व्वक अपना काल-यापन करें। यदि आशा हमारी है और हमें हमारे परिश्रम का पूर्ण विश्वास है तो निःसन्देह हम अपनी चिन्ताओं और आपत्तियों पर विजय प्राप्त कर सके हैं॥

हमें उच्च पद पाने की अवश्य अभिलाषा होनी चाहिये। तभी हम अपनी उन्नति कर सके हैं। परन्तु हम एकाएक अपने अभिलिषित पद को प्राप्त नहीं कर सके क्योंकि अच्छे कार्य्य करने में बाधायें अवश्य पड़ती हैं। परन्तु हमें इन सब को अपने धैर्य-रूपी शस्त्र से अलग करना चाहिये तो अवश्यमेव हम अपने अनुसंधान किये हुए पद को प्राप्त कर सके हैं॥

हमें यह जान लेना चाहिये कि 'ध्रुव' तारा जिससे हमें किसी भी देश की दिशाओं का ज्ञान होता है अंग्रेजी ज्योतिषकारों के मतानुसार सदैव अपने पद पर नहीं रहता और कभी २ वे तारे जिनकी हम ज्योतिष-शास्त्र में गणना भी नहीं करते क्रमशः इस पद को ग्रहण कर लेते हैं और अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाते हैं।

इस ऊपर कहे हुए उदाहरण से हमें यह ज्ञात होता है कि जो मनुष्य उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो चुका है अवनति दशा को अवश्य प्राप्त होता है और जो अभी अवनति दशा में है वे अवश्य उन्नति की दशा में प्राप्त होवेंगे।

इसलिये हमें उचित है कि हम कभी किसी कार्य में उतावली न करें और आशा किये हुए धैर्यता पूर्वक उसकी पूर्ति करने में दत्तचित्त रहें। यद्यपि हम में शारीरिक बल न भी हो, परन्तु ईश्वर ने हमें आशा रूपी एक अमूल्य बल दे रक्खा है जिसके सहारे हम अपनी चिन्ताओं को दूर कर आनन्द से रहते हैं और यही हमारे सुख का, हमारे जीवन का अमूल्य रत्न है ॥

स्वतंत्रता.

करि बिचार देखा मन माहीं ।

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ॥

तुलसीदास.

॥ स्वतंत्रता ॥

* एक बुल बुल की फ़रियाद पिंजड़े में ।

आता है याद मुझ को गुज़रा हुआ ज़माना ।
वह झाड़ियां चमन की वह मेरा आशियाना ॥
वह साथ सब के उड़ना वह सैर आसमां की ।
वह बाग़ की बहारें वह सब का मिल के गाना ॥
पत्तों की टहनियों पर वह झूमना ख़ुशी से ।
ठंडी हवा के पीछे वह तालियां बजाना ॥
लगती है चोट दिल पर आता है याद जिस दम ।
शबनम का सुबह आकर फूलों का मुँह धुलाना ॥
वह प्यारी प्यारी सूरत वह कामिनी सी मूरत ।
आबाद जिसके दम से था मेरा आशियाना ॥
आज़ादियां कहां वह अब अपने घोंसले की ।
अपनी ख़ुशी से आना अपनी ख़ुशी से जाना ॥

---

* यह कविता नवंबर १९१३ की सरस्वती से ली गई है। यह पंजाब के सरकारी मदरसों में प्रचलित है।

तड़पा रही है मुझ को रह रह के याद घर की ।
तक़दीर में लिखा था पिंजड़े का आबो दाना ॥
इस क़ैद का इलाही दुखड़ा किसे सुनाऊं ।
डर है यही क़फ़स में मैं ग़म से मर न जाऊँ ॥
क्या बदनसीब हूँ मैं घर को तरस रहा हूँ ।
साथी तो हैं वतन में मैं क़ैद में पड़ा हूँ ॥
आई बहार कलियाँ फूलों की हँस रही हैं ।
मैं इस अँधेरे घर में किसमत को रो रहा हूँ ॥
बाग़ों में बसने वाले खुशियाँ मना रहे हैं ।
मैं दिल जला अकेला दुख में कराहता हूँ ॥
आतीं नहीं सदायें उनकी मेरे क़फ़स में ।
होती मेरी रिहाई ऐ काश मेरे बस में ॥
जी चाहता है मेरा उड़ कर चमन को जाऊँ ।
आज़ाद हो के बैठूँ और शेर होके गाऊँ ॥
बेरी की शाख़ पर हो फिर इस तरह बसेरा ।
उस उजड़े घोंसले को फिर जाके मैं बसाऊं ॥
चुगता फिरूँ चमन में दाने ज़रा ज़रा से ।
साथी जो हैं पुराने उनसे मिलूँ मिलाऊँ ॥

फिर दिन फिरें हमारे फिर सैर हो चमन की ।
उड़ते फिरें खुशी से खायें हवा वतन की ॥
जब से चमन छुटा है यह हाल हो गया है ।
दिल ग़म को खा रहा है ग़म दिल को खा रहा है ॥
गाना इसे समझ कर ख़ुश हों न सुनने वाले ।
दुक्खे हुए दिलों की फरियाद यह सदा है ॥
आज़ाद रह के जिसने दिन अपने हों गुज़ारे ।
उस को भला ख़बर क्या यह क़ैद क्या बला है ॥
आज़ाद मुझ को करदे ओ क़ैद करने वाले ।
मैं बेज़बां हूँ क़ैदी तू छोड़ कर दोआ ले ॥

जिस प्रकार पक्षियों को स्वतंत्रता प्रिय है उसी प्रकार हमें भी होनी चाहिये। यह एक ऐसी वस्तु है जो हमें त्रिलोक का अधि-पाति बना सकी है । जितने बड़े२ महात्मा और बीर हुये हैं; केवल इसी के सहारे हुए हैं। यदि नेपोलियन जिस का नाम आज कल प्रत्येक जिह्वा पर है स्वतंत्रता-प्रिय था। बालपन से ही इस की स्वतंत्र बृत्ति थी । इस ने अपनी उमर के आठ या दस वर्ष खेल कूदमें विताये। यह

किसे ज्ञात था कि यह एक शूर वीर योद्धा और प्रतापी राजा हो जायगा परन्तु स्वतंत्रता ने ही इसे इस पद पर पहुँचाया।

स्वतंत्रता, जैसा कहा जाता है कि बालकों के लिये हानिकारक है उसी प्रकार हमारी समझ में लाभ-दायक भी है। बालकों को सदैव ताड़ना देते रहने से उनकी बुद्धि मन्द हो जाती है और अन्त में वे अपना भावी-जीवन नष्ट कर लेते हैं। सदैव ताड़ना देते रहने से वे निडर हो जाते हैं और उसकी परवाह न कर बुरे कर्म करने लगते हैं। उन की बुद्धि अच्छे विचारों में प्रवृत्त नहीं होती।

स्वतंत्रता और रुचि का घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य की रुचि जिस कार्य की ओर लगती है अगर वह स्वतंत्र हो तो उसे भली प्रकार पूर्ण कर सक्ता है। परतंत्रता ही विघ्न बाधाओं के रूप में हमारे कार्य को नष्ट करती है। इस कारण हम अपने गुणों का प्रकाश नहीं कर सके। पश्चिमी देशों में कोई विज्ञान शास्त्र में, कोई विद्युत-शास्त्र में और कोई पुस्तक रचना में जो विद्वान पाये जाते हैं। उस

का मुख्य कारण यही है कि उन्हें स्वतंत्रता अधिक प्रिय है और वे किसी अंश में स्वतंत्र भी हैं। इनकी रुचि जिस विषय की ओर झुकी इनके माता पिता ने इन्हें उसी में प्रवृत्त होने दिया। किसी ने कहा है कि केवल वही स्वतंत्र है जो अपने आत्मा और शारीरिक बल से निर्वाह करता है। दूसरों पर भरोसा न कर अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न करो। तुम्हें कीर्ति अवश्य मिलेगी। यदि हम अपनी क़ौम और देश की उन्नति चाहते हैं तो हमें स्वतंत्रता-प्रिय होने की बड़ी ज़रूरत है। भारतवर्ष में सौ में पांचही निकलेंगे जो स्वतंत्रता-प्रिय हैं और जो अपना जीवन अपने ही भरोसे पर चलाते हैं।

* एक मेरे मित्र ने जिनकी उमर लगभग ३० वर्ष की थी मुझसे कहा था कि—"मैं बिजनौर में हिन्दी पढ़ता था चौथी पास कर लेने पर मेरे पिता ने मुझे अपने भाई के पास अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये भेजा। मैं स्वभाव का सीधा था पर मेरे चाचा के पुत्रों ने मेरा जीवन नष्ट कर दिया कभी २

* यह वृत्तांत मेरे मित्र ने जिनका अब देहान्त हो चुका है सन् १९०८ में बिलासपुर से कटनी जाते समय सुनाया था।

वे मेरे जेब (पाकट) में चने, मिठाई इत्यादि और कभी २ रुपये पैसे भी लाकर रख दिया करते और अपने माता पिता से कह मुझे चोरी का इलजाम लगाते थे। वे मुझे अधिक दंड दिया करते थे मेरे निर अपराधी रहने के कारण मुझे अधिक दुःख और पश्चाताप हुआ करता था। मेरा अधिक समय इन दुष्टों से छुटकारा पाने के विचार में जाता और पढ़ने में चित्त नहीं लगता था। मेरे चाचा साहब भी बड़े भले आदमी थे। वे कभी २ अपने मित्रों के सामने मुझे बुला कर मेरी बुराई किया करते थे। जिसका यह परिणाम होता कि मेरे चाचा साहब के मित्र गण मुझे तिरस्कार किया करते थे। इन सब कारणों से मुझे वहां रहना असह्य हो जाता था॥

मैंने, अपने पिता को दुःख पहुँचेगा, यह समझ यह वृत्तान्त कभी नहीं सुनाया और अन्त को मैंने मिडिल तक पढ़ कर मुख्त्यारी की परीक्षा पास करली और किसी तरह अपना पालन पोषण करने लगा"।

बालकों को ताड़ना इतनी मिले जिस से वे बुरे मार्ग में न आने पावें। यदि हम अपने भावी सन्तान की भलाई

चाहते हैं तो हमें उचित है कि हम उन्हें दूसरों के आधीन न कर स्वयं पढ़ावें और इस प्रकार उन्हें परतंत्रता के पंजे से बचावें और नाते दारों के आधीन न देकर उन्हें किसी छात्र शाला में रक्खें। लेकिन यह तभी हो सक्ता है जब कि हम ने अपने बालकों के आचरण सुधार ने में पूरा ध्यान दिया हो।

वह मनुष्य जो गर्व के कारण स्वयं अपनी प्रशंसा करता है कभी सुखी नहीं रहता। वह जो परतंत्र है, जो सदैव दूसरों का भरोसा करता है मनुष्यत्व को प्राप्त नहीं होता और उस की स्वतंत्र राज्य की प्रजा में गणना नहीं की जासक्ती। ग्रीस; रोम; इटाली अपने स्वतंत्र प्रियता के लिये आज तक प्रख्यात हैं।

जितने बड़े २ युद्ध पृथ्वी पर हुए हैं उन से केवल स्वतंत्रता ही प्राप्त होते देखी गई है। इंगलैन्ड में जो स्त्रियों ने आज कल गड़बड़ मचा रखी है उस का मुल्य उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्त करनेकाही है। इस लिये तुम स्वतंत्रता प्रिय बनो जिस से तुम अपने गुणों का चमत्कार दिखला

सको परन्तु ध्यान रहे कि इस के प्राप्त करने में तुम्हारे स्वामिभक्त बने रहने में कलंक न लगने पावे ।

पाश्चात् देशों के लोग जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं स्वतंत्र हैं और वे इस गुण के कारण अनेक नये२ आविष्कार कर सके हैं । इन देशों में कई एक महा विद्यालय प्रत्येक विषय के हैं जहां पर विद्यार्थी लोग अपनी २ रुचि के अनुसार और जिस विषय में उनकी श्रद्धा है उस विषय में परिपक्व किये जाते हैं ॥

इन विद्यालयों को अंग्रेजी में Research Institute कहते हैं और यही कारण है कि वहां के लोग, कोई विद्युत शास्त्र में; कोई विज्ञान शास्त्र में; कोई काव्य रचना में और कोई खेती किसानी के कार्य में दक्ष पाये जाते हैं । जितने आविष्कार-कर्ता हैं वे स्वतंत्र प्रिय हैं जिसके कारण वे अपनी चित्त की वृत्ति एकाग्र कर सके हैं । कपड़े सीने की कल के आविष्कर्ता बहुत गरीब थे और जो कुछ इनके पास द्रव्य था सब इसी के आविष्कार में खर्च कर दिया । एक दिन की बात है कि जब इन्हें इस कल के बनाने के लिये

द्रव्य नहीं मिला तो उन्होंने समुद्र के किनारे जा आत्मघात करना चाहा। इस समय एक इनके मित्र इन्हें अकस्मात् यहां पर मिले और इनसे इस अनुचित आत्मघात का कारण पूछा। पूछने पर मालूम हुआ कि इनकी सारी सम्पति केवल सीने की कल के निर्माण में खर्च हो चुकी लेकिन इस पर भी इन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई और यही कारण है कि ये अब निराश हो आत्मघात पर उतारू हुए हैं। यह जान कर इनके मित्र ने इन्हें कुछ सहायता दी और इस बार ये महाशय अपने कार्य में सफली-भूत हुए। इन के इस परिश्रम का आज यह फल देखने में आता है कि गांव २ इस कल का प्रचार हो गया है और इस से उन्होंने जो कुछ रुपया कमाया उसका हम अनुमान भी नहीं कर सके। यदि इन्हें स्वतंत्रता-प्रिय न होती तो इन्हें क्या गरज पड़ी थी कि वे अपने जीवन को इस कल के आविष्कार में व्यतीत करते। निःसन्देह हमें आज कल दासता एवं पराधीनता इतनी प्रिय हो रही है कि हमें और कुछ नहीं सूझता—पराधीनता एक बुरी वस्तु है इसके आधीन होने के कारण हमें अपने दासत्व कार्य करने के सिवाय और कोई दूसरी बातें सोचने का

अवसर ही नहीं मिलता यहां तक कि जहां तक हमने सुना है घर के अनेक कार्य अधूरे भी रह जाते हैं। हम इसके अभाव के कारण सम्मिलित-कुटुम्ब की प्रथा को दूषित कह सके हैं। यद्यपि इससे कई एक विशेष लाभ भी हैं। इस विषय को श्रीयुत सत्यदेव जी ने अपनी पुस्तक "मनुष्यों के अधिकार" में तीन खंड में विभाजित किया है और इसे अधिक विस्तार पूर्वक लिखा है। यदि तुम दासत्व से बचना और स्वतंत्र प्रिय बनना चाहते हो तो नीचे लिखी हुई बातों का अभ्यास डालो।

१. अपनी आवश्यक वस्तुओं की तादाद नियत कर लो।

२. ये थोड़ी और कम क़ीमती होनी चाहियें।

३. थोड़े में निर्वाह करने की आदत डालो।

४. सच बोलने में कभी मत चूको और उचित अनुचित का ध्यान रखो।

५. उधार कोई चीज न खरीदो।

६. बार बार दूकानों में कभी न जाओ।

७. नीलाम में यदि कोई चीज सस्ती भी मिले बिना जरूरत के कभी न खरीदो।

॥ परिश्रम और आलस्य ॥

आलस का सा बैरी घोर ।
इस दुनियां में है नहिं और ॥
नहीं आलसी तुम कहलाना ।
धन विद्या बल खूब कमाना ॥

मक्खन द्विवेदी गजपुरी.

परिश्रम और आलस्य।

जो परिश्रमी हैं उन्हें अभीष्ट पदार्थों के प्राप्त करने में कोई कठिनता नहीं उठानी पड़ती, सुख भोग की सामग्री उन्हें अनायास प्राप्त होती हैं। श्रेष्ठ वे ही गिने जाते हैं जो परिश्रमी हैं। महात्मा "रिनौल्डस्" का मत है कि मनुष्य के सर्व गुण-सम्पन्न होने पर भी परिश्रम उसके गुणों को और भी उज्वल बना देता है और साधारण बुद्धि वाले मनुष्य के गुणों की कमी में पूर्ति करता है॥

हमारी उन्नति के लिये जिस प्रकार समय की अनुकूलता की आवश्यकता है उससे बढ़ कर परिश्रम की भी आवश्यकता है। परिश्रम से हमें दो बड़े लाभ हैं पहला-हम इस के सहारे अपने अभिलिषित पदार्थ की प्राप्ति कर सके हैं। दूसरा यह है कि जब हम अपने अभीष्ट पदार्थ को प्राप्त कर चुकते हैं तो हमें यह सोचने का अवसर मिलता है कि हमारा परिश्रम किसी अमुक कार्य के सम्पादन में सफल

हुआ और इस कारण हमारे सुख की मात्रा दूनी हो जाती है। इस लिये हमें चाहिये कि हम परिश्रमी बनें चाहे हम दाल रोटी से सुखी क्यों न हों। हमारी तन्दुरुस्ती के लिये परिश्रम करना अधिक लाभदायक है। हम देखते हैं कि किसान या मजदूर दिन भर परिश्रम करता है और सायंकाल के समय स्वतंत्रता पूर्वक विश्राम करता है और निरोग रहता है। इस से हमें ज्ञात होता है कि परिश्रमी मनुष्य चिन्ता रहित हो अपना समय व्यतीत करता है। परिश्रमी मनुष्य अपने देश-वासियों के दाहिने हाथ का कार्य सम्पादन करता है और परोपकार करने से कभी नहीं हिचकता। हमें परिश्रम के फल की प्राप्ति के लिये अधीर न होना चाहिये। जो अधीर हैं वे उतावली के कारण अपने बने बनाये कार्य को भी नष्ट कर लेते हैं। उतावली परिश्रम की किनारों को मन्द कर देती है। वरन परिश्रम हमारे चित्त को स्थिर रखता है और बुरे मार्ग में प्रविष्ट नहीं होने देता॥

यदि हम पाप से वँचित रहना चाहते हैं तो हमें उचित है कि हम परिश्रमी बने। महात्मा 'न्यूटन' ने कहा है

कि यदि मुझ से मेरे देशवासियों की जो कुछ भलाई और सेवा बन पड़ी, वह केवल मेरे परिश्रम और धैर्य का ही कारण है।

आलस्य हमें हठीला और उपद्रवी बनाने में कभी कमीं नही करता। यदि हम अपने शरीर, अपनी आत्मा; और अपने अन्तःकरण को नष्ट किया चाहते हैं तो हमें आलस्य रूपी औषधि का पान करना चाहिये। इस के वश हो हमें सांसारिक आपत्तियाँ सहना पड़ती हैं और हम दुर्गुणी हो जाते हैं। लोग हमें मरने पर स्मशान पर लेजाते हैं परन्तु हमारी जीवित-अवस्था में आलस्य ही हमें स्मशान का कामदेता है। अर्थात् आलस्य के कारण हम अनेक दुर्गुण सीख लेते हैं और पीरणाम यह होता है कि हम कु-समय में ही अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं। आलसी मनुष्य का जीवन केवल उदर पोषण में ही जाता है; वहभी पराये भरोसे। जिस प्रकार किल्ली ढोरों के शरीर का खून पी लेती है और अपना उदर पोषण कर उन्हें कष्ट पहुँचाती है, आलसी लोगोंकाभी ठीक ऐसा ही व्यवहार रहता है। वे स्वयं आत्मघात कर दूसरों को दुःखित करते हैं। आलस्य

ही संसार में हमारा पूरा बैरी है और दारिद्रता का जन्म दाता है। आलसी मनुष्य को भिखारी के समान अपने सुख की प्राप्ति के लिये घर२ घूमना पड़ता है। इस लिये हमें उचित है कि हम भारत-माता के आलसी कपूत न बनें।

जिस प्रकार राजा के होते हुए भी राज्य के अन्य-कर्म-चारी गण प्रजा की रक्षा करते हैं उसी प्रकार हमें भी दूसरों की भलाई में लगे रहना चाहिये। किसी को हम हल चलाते, किसी को तिहाई पर घन चलाते, किसी को कपड़े बुनते और किसी को भूगोलिक ज्ञान प्राप्त करते पाते हैं अर्थात् सभी एक दूसरे की भलाई में उद्यत् रहते हैं। हम किसी से ज्ञान प्राप्त करते, किसी से खाने-पीने की सामग्री पाते और किसी से अन्य आवश्यकीय पदार्थ प्राप्त करते हैं। इस कारण संसार के सभी मनुष्य एक दूसरे के परम मित्र हैं जो एक दूसरे की भलाई किया करते हैं, और एक दूसरे के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हैं. तो हमें कब उचित है कि हम आलसी बनें और एक दूसरे का हाथ बँटाने में क्यों न शामिल हों।

हमें आलस्य से सदैव दूर रहना चाहिये। आलसी मनुष्य बहुधा अपना समय छोटी२ बातों में अधिक खर्च किया करता है। किसी को अपने शृगांर से फुरसत नहीं मिलती। कोई क़ीमती कपड़ों में ही अपना वैभव समझता है। कोई अपना समय गप्पों में व्यतीत करता है और कोई गाने बजाने में ही मस्त रहता है। इस कारण हमें शिक्षित समाज घृणा करती है। एक दिन जनरल स्पिनोला ने कप्तान व्हीरी से पूछा कि कृपा कर यह बतलाइये कि आप के बन्धु की मृत्यु किस कारण से हुई। व्हीरी ने कहा कि हमारे बन्धु के मरण का मुख्य यही कारण था कि वे खाली बैठे रहा करते थे और उन्हें कोई भी कार्य नहीं सूझता था। वे आलस्य के परम मित्र थे। स्पिनोला ने जवाब दिया कि निःसन्देह आलस्य निरुद्यमी बीरकाभी पतन कर सक्ता है। कैसाभी प्रताप्री बीर क्यों न हो आलस्य से कभी जय प्राप्त नहीं करता। उद्यम ही प्राणीमात्र का जीवन है। जिस प्रकार शारीरिक परिश्रम करने वाले को अन्न रूचिकर प्रतीत होता है उसी प्रकार मानसिक परिश्रम करने वाले को सन्ध्या का समय सुहावना जान पड़ता है। जिस प्रकार

शारीरिक परिश्रम करने वाले की तृप्ति भोजन से होती है उसी प्रकार मानसिक परिश्रम करने वाले की तृप्ति बाहरी द्रव्य से होती है।

आलसी मनुष्य ही चोर, लुच्चे, और गँवार का पद प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार गृहस्थ मनुष्य अपना बजट या चिट्ठा सालभर की आवश्यकीय वस्तुओं का तैयार करता है उसी प्रकार आलसी मनुष्य भी अपने उपद्रव और कुकर्मों की फेररिस्त बना रखता है परन्तु हम कभी उस फेहरिस्त को पूरी नहीं पाते अर्थात उसकी फेहरिस्त सदैव अधूरी ही रहती है।

उद्यमी मनुष्यों में बहुधा दो एक व्यसन पाये जाते हैं परन्तु आलसी मनुष्यों में प्रायः सभी व्यसन मिलते हैं। इस कारण उन का जीवन मार्ग सदैव कँटक से भरा रहता है और ये अपनी टूटी फूटी पूँजी को भी इस में नष्ट कर बैठते हैं।

जब हम मानसिक शक्तियों का सद्व्यय नहीं करते तब हम आलसी का पद ग्रहण करते हैं। इस लिये हमें उचित है कि हम सदैव अपने मानसिक विचारों को अच्छे कार्य के सम्पादन में लगावें। आलसी मनुष्यों को शान्ति कभी नहीं मिलती क्यों कि वे प्रतियाम उपद्रव की तलाश में लगे रहते हैं। वह मनुष्य जो अपने कार्य को कल पर रख छोड़ता है उसकी भी इन में गणना की जा सकी है। 'चार्लस हेनरी' अपने मित्र को सूचित करता है कि यदि मैं समय को हाथ से न जाने देता और मैं अपने कार्य को कल पर न रख छोड़ता तो मेरी यह दशा न हुई होती। इस लिये हमें उचित है कि हम अपने कार्य को नियत समय पर पूरा कर लें और उस के लिये पश्चाताप करने का अवसर न दें। उसी मनुष्य का जन्म सफल है जो अपने भविष्यत के लिये चिउँटी के समान शुभ कर्म्मों की सामग्री इकट्ठी कर लेता है। भारतवर्ष में कई ऐसे मिलेंगे जिन का जन्म लेना और न लेना बराबर ही है। वे उन पक्षियों के समान हैं जो अपने गिरोह में नहीं रहते। आलसी मनुष्य अपनी युवा अवस्था यही सोचने में व्यतीत

करता है कि उसे क्या करना चाहिये। जिस प्रकार मधु मक्खी परिश्रम में रत रहती है, हमें उचित है कि हम उससे भी अधिक परिश्रम करें।

ईश्वर ने हमें विवेचना शक्ति दे रखी है। उसे अच्छे विचारों में लगाना हमारा परम धर्म है। हम इस शक्ति के सहारे अपना तथा अपने बन्धु-बान्धवों का और अपने देश का भला कर सके हैं। विवेचना शक्ति को यथोचित रूप से कार्य में परणित करने को ही हम परिश्रम कहते हैं॥

ग़रीबी

धनिकों से धनहीन सुखी हैं,
जो दिन के श्रम से आते ।
बैठ साहित अपने कुटुम्ब के,
साँझ समय भोजन पाते ॥

केशव.

—ग़रीबी—

आलस्य ही हमारे दरिद्री रहने का मुख्य कारण है धनी वह है जिस का खर्च उस की आमदनी से कम हो। वही ग़रीब है जिस का खर्च उस की आमदनी से अधिक हो। इस लिये हमें चाहिये कि हम अपनी आमदनी का चिठ्ठा बना लें और उस से कम खर्च करने की बान डालें। वह पाक शाला जहाँ बहुमूल्य भोजन तैयार किये जाते हैं ग़रीबी का मुख्यद्वार है। मृच्छकटिक में लिखा है कि दारिद्रता के कारण मनुष्य का मान नहीं होता, मान न रहने से मनुष्य अपने पैरों खड़ा होना नहीं चाहता। उस की बुद्धि निजकी भलाई की ओर तत्पर नहीं रहती और अन्त में वह अनेक कष्ट का भागी होता है।

जब हमारे पास अधिक द्रव्य रहता है हम जो चाहे सो कर सके हैं। हम जहाँ चाहें वहाँ विचर सके हैं। और हमें हमारे सुख की सामग्री ढूंढने को दूसरों के पास नहीं जाना पड़ता। परन्तु जब हम द्रव्य हीन होजाते हैं आवश्य-

कता आने पर कभी२ हमें उन मित्रों का मुँह ताकना पड़ता है जो हमारे धनी रहने पर हमारे आश्रित थे। ऐसी अवस्था में वेभी जवाब देदेते हैं।

दारिद्रता के विषय में कहा जाता है कि ग़रीब मनुष्य अपनी उन्नति क्रम२ से कर सक्ता है और जिस वस्तु की उसे आवश्यकता होती है वह स्वयम् उस के लिये उपाय रच लेता है। ग़रीब मनुष्य थोड़े में ही सन्तुष्ट रहता है और अधिक धन प्राप्ति की उसे चाह नहीं रहती। यथार्थ में ग़रीब मनुष्य उस राजा से जो धन धान्य से परिपूर्ण रहने पर भी असन्तुष्ट रहता है कई गुना बढ़कर धनी है। वह जो आवश्यकता के अनुसार खर्च करता है कदापि ग़रीब नहीं हो सक्ता। हम अपने हिसाब को देख कर ही अपनी स्थिति ठीक२ नहीं जान सक्ते। मनुष्य के पास द्रव्य रहने व न रहने से हम उसे ग़रीब अथवा अमीर नहीं कह सक्ते। बड़े दिल वाला ही चाहे उस के पास द्रव्य न भी हो अमीर कहलाने योग्य है। हम उस मनुष्य को जो दिन भर परिश्रम कर अपने खाने पीने और वस्त्र इत्यादि के लिये द्रव्य इकट्ठा कर सक्ता है ग़रीब नहीं कह सक्ते।

जो कुबेर की सी समता करने पर कर्ज से लदे रहते हैं ग़रीब कहे जा सके हैं।

पाश्चात् देशों में जितने आविष्कारक हुए हैं उन में से बहुतों का जन्म ग़रीब खानदान में हुआ है। भारत वर्ष में भी जितने बड़े२ महात्मा हुए हैं, प्रायः उन सब की भी यही स्थिति थी। तुलसीदास , सूरदास, कबीर और गिरधर इत्यादि साधारण स्थिति के थे। इन के माता-पिता की गणना करोड़पतियों में नहीं की जाती थी। परन्तु अपनी साधारण स्थिति के कारण ये परम सुखी थे। जिस प्रकार कीचड़ में भी मोती पाये जाते है उसी प्रकार ग़रीब कुटुम्ब में भी ऐश्वर्य शाली महात्माओं का जन्म होता है। करोड़ाधिपति के यहाँ भी ऐसे महात्माओं का जन्म जिन्हों ने अपनी कवित्व शक्ति के द्वारा सारे सँसार को चकित कर दिया है और जो अपनी भावी-सन्तान तथा देश हित के लिये आदर्श ग्रन्थ छोड़ गए हैं क्वचित देखने में आया है। उस मनुष्य की जो सदैव धनमद के कारण सँसार को तुच्छ समझता है धनिकों में गणना नहीं की जा सकी। दरिद्रता यथार्थ में एक अलभ्य वस्तु है। इस के कारण हम अपने

पैरों पर खड़ा होना सीखते हैं। यह हमें कुमार्ग में जाने से बचाती है। हमारे आचरण सुधारने में सहायता देती और हमें परिश्रमी बनाती है। आलस्य इस से सदैव दूर रहता है। जो वस्तु हमारे इतने लाभ की है, भला हम उसे कैसे तुच्छ समझें।

किसान जो दिनभर परिश्रम करता है, सदैव निरोगी रहता है। उसे शराब, गांजा; भँग, चरस, चन्डू और नाटक इत्यादि का व्यसन नहीं घेरता। जब हम अपनी स्थिति से इन की तुलना करते हैं तो हम इन्हें आधिक सुखी पाते हैं। इस लिये हमें उचित है कि हम अपनी ग़रीबी हालत पर सदैव सन्तुष्ट रहें। ग़रीबी जो हमारे मन को सत्धर्म की ओर प्रवृत्ति करती है धन से कहीं बढ़ कर है। अँग्रेजी में कहावत है कि Poverty is the mother of health अर्थात् दारिद्रता ही हमारे स्वास्थ्य की जन्म दात्री है। ग़रिब मनुष्य जो प्रातः काल उठ कर अपने कार्य पर तत्पर होते हैं हम उन्हें दूसरों पर अपना दुख प्रकट करते नहीं देखते। वे अपने कार्य में निमग्न हो कभी राग अलापते

पाये जाते हैं। इन्हें हम निःसन्देह सुखी कह सक्ते हैं इन्हें धनाढ्य की तरह अपनी क्षुधा बढ़ाने के लिये औषधियों का सेवन नहीं करना पड़ता। इसकी कुटी ही इसे महल स्वरूप है, सन्तोष ही मुकुट है, और परिश्रम ही औषधि का काम देता है। गरीब बिना मुकुट के ही राजा कहाने योग्य है।

॥ धीरज ॥

ठहरो ! फिर दुनिया तुम्हारी ही तो है।

Wait and the World is your's.

॥ धीरज ॥

पिछले अध्याय में आप ने आशा के विषय में पढ़ा है। इस का संबन्ध भी उस से बहुत कुछ है। हम इसे साँसारिक वस्तुओं में पहला नंबर दे सके हैं। इसे अपना लेना पहले असाध्य जान पड़ता है। जो इस के दास हैं और जिन्हों ने इसे पाने का कुछ भी प्रयत्न किया है उन्हों ने निःसन्देह अपना जीवन आनन्द से व्यतीत किया है। जिस प्रकार हम टूटे फूटे मकान को चूना लगा कर साफ और सुथरा कर लेते हैं उसी प्रकार हमें अपने जीवन को सुधारने के लिये धीरज-रूपी चूने की बड़ी आवश्यकता है। जिस प्रकार फोड़े फुन्सियों को हम मरहम लगा कर अच्छा कर लेते हैं उसी प्रकार हमें अपने दुःख-मय जीवन को धीरज रूपी मरहम लगा कर अच्छा कर लेते हैं।

रंज को दूर करने के लिये धीरज ही एक अमूल्य रत्न है। धैर्य उन के लिये जिन्हों ने अपनी अवस्था

सुधारने में सब प्रकार के उपाय कर लिये हैं पर सफलता प्राप्त न हुई एक अमूल्य औषधि है ॥ हिन्दी में कहावत है कि—

उतावला सो बावला ।

धीरा सो गम्भीरा ॥

यथार्थ में जो किसी कार्य के करने में उतावली करता है उसे कभी सफलता प्राप्त होते नहीं देखी गई। वही गम्भीर कहाने योग्य है जो अपने कार्य को धीरता पूर्वक सम्पादन करता है और अपने कार्य की सिद्धि में अधीर नहीं होता। यह एक प्रकार की शक्ति है जो हमारे हृदय में साहस का अनुभव कराती है। योग्यता तथा धैर्यता से सम्पादित किये हुए कार्य में सफलता अवश्य प्राप्त होती है निपोलियन का जिन्हों ने जीवन चरित्र पढ़ा है वे इसकी यथोचित रूप से उपयोगिता समझ सके हैं।

इस जीवन शाला में हमें जितने पाठ पढ़ने हैं उनमें यह मुख्य और दुष्कर है। इस बात का हमें ध्यान रहे कि यदि

हम बिना उपाय किये हुये केवल धीरज के सहारे ही बैठे रहें तो हमारे कार्य की सिद्धि कदापि नहीं हो सकी। क्यों कि हाथ पर हाथ रखे हुए काम नहीं चलता और महन् कार्य की सिद्धि एकाएक नहीं होती। इस लिये हमें किसी कार्य की सिद्धि के लिये क्रमशः प्रयत्न करते रहना चाहिये"। धीरज को पहचान लेना ही या उसको ग्रहण करना ही जीवन का गुप्त रहस्य है।

जिस प्रकार परिश्रम करने से मानसिक तथा शारीरिक बल की बृद्धि होती है उसी प्रकार संकटों का क्रमशः सहन करते रहने से हम धीरज को अपना लेते हैं और एक नया गुण प्राप्त कर लेते हैं।

इस गुण के कारण हम बड़े से बड़े संकट कोभी कुछ नहीं समझते। यदि हम इस गुण को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि हम उद्यान के पुष्पों का भली-भाँति निरीक्षण करें। जिस प्रकार पुष्प खिलने के पहले बोंडी का रूप धारण करता है फिर वह पकती और खिलती है और उस की सौरभ के लिये हमें कुछ काल तक ठहरना

पड़ता है इसी प्रकार हमें अपने कार्य की सफलता के लिये धैर्यता पूर्वक बाट जोहना चाहिये डाक्टर जौन्सन ने एक आदमी से कहा कि यदि तुम कोई पुस्तक लिखना चाहते हो तो तुम्हें चाहिये कि पुस्तक लिखने के पहले किसी वचनालय या पुस्तकालय में जाकर कम से कम उक्त पुस्तकालय की आधी से ज्यादा पुस्तकों को पढ़ो फिर तुम्हें अपनी पुस्तक की पूर्ति करने में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

किसी समय किसी सम्पादिका ने 'वर्डस्वर्थ' से कहा कि मुझे इस कविता के सम्पादन में ६ घंटे लगे इस पर वर्डस्वर्थ ने कहा कि यदि इसी कविता को मैं लिखता तो मुझे ६ हफ़्ते लगते अर्थात इस कविता में अभी वह रोचकता नहीं झलकती और यदि इस के सम्पादन में कुछ अधिक समय और खर्च किया जाता तो अवश्य यह एक उच्च श्रेणी की कविता गिनी जाती।

'विशप हौल' के धैर्य का यदि आप अनुमान करें तो आप अवश्य चकित हो रहेंगे। इन्हों ने अपनी एक पुस्तक के लिखने में ३० वर्ष व्यतीत किये।

किसी धनवान मनुष्य ने 'होवर्ड बरनेट' से अपनी तसवीर की पुस्तक में कुछ तसवीरें जोड़ कर उस में जिल्द बांधने को कहा और इन्हों ने इस कार्य को ५ मिनट में पूरा कर उस के लिये ५००) रूपये मजदूरी मांगी। इस पर उक्त महाशय ने कहा कि इस कार्य के करने में आप को केवल ५ही मिनट लगे तो हम इस के लिये ५००) रुपपे क्यों दें ? यह सुन 'होवर्डबरनेट' ने कहा बेशक मुझे पांच मिनट लगे लेकिन इस कार्य को पांच मिनट में पूरा करने के लिये मुझे ३० वर्ष तक सीखना पड़ा यह सुन उस ने इन्हें मुँहमांगी मजदूरी दे इन से बिदा मांगी। इस लिये हमें चाहिये कि किसी भी कार्य के करने व सीखने में उतावली न करें। मकान यदि हम उसकी बार २ मरम्मत नहीं करना चाहते तो हमें चाहिये कि हम उस की नींव को मजबूत बना लें। रूम देश में किसी भी कार्य को सम्पादन कर लेने के पूर्व उस की दृढ़ता पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

'ऐडीसन' ने एक जगह लिखा है कि मैं ने फोनोग्राफ बनाने में बड़ी मिहनत उठाई मुझे इसमें सफलीभूत होने के

लिये प्रति दिन २० घंटे मिहनत करनी पड़ी और इस प्रकार ७ महीने तक लगातार मैं प्रयत्न करता रहा और अन्त को मुझे सफलता प्राप्त हुई।

इस से हम यह कह सके हैं कि यदि हम अपनी कीर्ति फैलाया चाहते हैं और १०० में १ गिने जाना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि हम 'न हो सकेगा' इन शब्दों का कभी प्रयोग न करें और धैर्यतापूर्वक परिश्रम में लगे रहें। किसी ने सच कहा है कि :-

* "न हो सकेगा" यह काम भाई,
कभी न बोलो अति हीनताई।
न क्यों सकोगे कर सो बिचारो,
अधीरता को मन से निकारो ॥१॥

---

* यह कविता पंडित जनार्दनझा रचित "चरित्रगठन" से उधृत की गई है।

नहीं बनोगे यदि कर्म बीर,
सभी कहेंगे तुमको अधीर ;
असाहसी को हँसते सभी हैं,
न प्रेम जी से करते कभी हैं ॥२॥

'जोन्स चिकरिंग' के लिये प्यानो बनाना कोई असाध्य काम नहीं था। बहुधा लोग अपना स्वार्थ साधने के लिये ही परिश्रम करते हैं लेकिन इस ने बिना वेतन के ही इस के बनाने में कई वर्ष व्यतीत किये और अन्त में इसे सफलता प्राप्त हुई।

"लौंगफैलो" ने अपनी किताब में लिखा है कि बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जो अपने नियमों का पूरा२ पालन नहीं करते और उन्हें दृढ़ नहीं होने देते अथवा वे उन के पालने का पूरा२ अभ्यास नहीं डालते। वे बहुधा बच्चों के समान अपने नियम रूपी पुष्प वृक्षों को जो हाल ही में

लगाये गए हैं बार२ उखाड़ डालते हैं यह देखने के लिये कि उनमें जड़ निकली या नहीं इस लिये हमें चाहिये कि हम केवल आँख बन्द कर काम ही न करते जावें परंतु उस के फल की प्राप्ति के लिये कुछ काल तक अवश्य ठहरें ।

॥ संतोष ॥

——:o:——

सन्तोषियों को दुख ही नहीं है ।
सन्तोष का मान सभी कहीं है ।
सन्तोष को स्वीकृत जो करेगा ।
सो संकटों से न कभी डरेगा ॥

रूपनारायण पाण्डेय

*॥ सन्तोष ॥

(१)

सन्तोष सा साधन है न अन्य ।
सन्तोष ऐसा धन है न अन्य ॥
सन्तोष के भक्त बनो अनन्य ।
सन्तुष्ट हैं सिद्ध सदैव धन्य ॥

(२)

सन्तोषियों को दुख ही नहीं है ।
सन्तोष का मान सभी कहीं है ॥
सन्तोष को स्वीकृत जो करेगा ।
सो संकटों से न कभी डरेगा ॥

---

* यह कविता रूपनारायण पाण्डेय रचित ' हितकारिणी ' मासिक पत्रिका से उधृत की गई है ।

(३)

सन्तोष से हीन धनी न अच्छा ।
सन्तुष्ट का जीवन दीन अच्छा ॥
सन्तोषियों को सुख नींद आती ।
सन्तोषियों की फटती न छाती ॥

(४)

रे मूढ़ मेरे मन, मान सीख ।
सन्तुष्ट हो जा मत मांग भीख ॥
जो तू करेगा तुझ को मिलेगा ।
जो बीज बोया वह ही फलेगा ॥

(५)

जो प्राप्त है तू उस को सँभाल ।
अप्राप्त के हेतु न हो बिहाल ॥
हो लालची छोड़ न भव्यभाव ।
सन्तोष है सज्जन का स्वभाव ॥

(६)

उद्योग को किन्तु न छोड़ देना ।
आलस्य सम्बन्ध न जोड़ लेना ॥
सन्तोष आलस्य विभिन्न जानो ।
आलस्य को तो विष तुल्य मानो ॥

(७)

सन्तोष से चित्त रहे प्रसन्न ।
आलस्य से जीवन हो विपिन्न ॥
सन्तोष से सिद्धि रहे समीप ।
आलस्य से रंक बने महीप ॥

(८)

संयोग से हो यदि कार्य्य नाश ।
तो भूल के भी मत हो हताश ॥
सन्तोष जी में रख निष्ठ होना ।
आलस्य में व्यर्थ समय न खोना ॥

(६)

उद्योग के साथ करो सुकृत्य ।
आलस्य के मित्र बनो न भृत्य ॥
जो विघ्न बाधा पथ बीच पाओ ।
सन्तोष के साथ उन्हें हटाओ ॥

॥ संगति ॥

नीच बड़न के संग तें,
पदवी लहत अतोल ।
परे सीप में जलद जल,
मोती होत अमोल ॥
नीच चंग सम जानियो,
सुनि लखि तुलसीदास ।
ढील देत महि गिरि परत,
खैंचत चढ़त अकाश ॥

॥ संगति और मनो विकार ॥

संगति दो प्रकार की है। एक बुरी और दूसरी भली। संगति से ही मनुष्य का आचरण जाना जाता है। जिन के साथ हम सदैव रहते हैं उन के रहन सहन और बोली बानी से ही लोग हमारे आचरण की जाँच कर लेते हैं। मनुष्य जैसी संगति करता है उसी प्रकार उसे सुख दुःख भी व्यापता है और आचरण भी उसी के तुल्य हो जाते हैं। यदि हम शराब की भट्टी के पास खड़े होकर दूध भी पीते हों तो लोग यही समझेंगे कि निःसन्देह हम शराब पी रहे हैं। इसी प्रकार यदि हम कुकर्मी मनुष्यों के साथ रहेंगे तो दूसरे जो हमारे शुभ-चिन्तक हैं अवश्य हमें बुरा कहेंगे यदि हम ताड़ के वृक्ष के नीचे बैठ कर दूध भी पीते हों तो आप ही बताइये कि आप हमारे सम्बन्ध में कैसी भावना करेंगे ? निःसन्देह आप यही कहेंगे कि हम ताड़ी पी रहे हैं जिस प्रकार सूर्य का तीव्र प्रकाश और उसकी चकमकाहट बादलों के आकाश में आच्छादित होने से कम हो जाती है

उसी प्रकार बुरी संगति भी हमारे निर्मल अन्तःकरण को दूषित बना देती है।

कोई कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो और उस का आचरण कितना भी उच्च क्यों न हो पर लोग सदैव दूसरों के ऐब ढूंढ़ते रहते हैं और यदि तनिक भी किसी से ग़फ़लत हुई तो लोग उसे बुरा भला कहने में कसर नहीं करते। इससे हम यह जान सक्ते हैं कि यदि हम बुरी संगति करेंगे तो बुरे और भली संगति करेंगे तो भले कहलाएँगे।

निर्मल वायु जो कभी दूषित नहीं समझी जाती यदि पुष्प-वाटिका में होकर बहती है तो हमें आनन्द प्रद जान पड़ती है और हमारे मुँह से अनायास यही निकलता है कि अहा कैसी सुगन्ध-मय वायु बह रही है परन्तु यदि वही हवा लीद गोबर इत्यादि के पास से होकर बहे तो हमें दुर्गन्ध-मय जान पड़ेगी। इस से हमें यह जान पड़ता है कि मनुष्य के गुण युक्त होने पर भी हम उस की संगति के कारण उसे घृणा या प्रेम करने लगते हैं। जिस प्रकार समुद्र का

खारा जल मेघ में मिलने से अपना खारापन त्याग देता है उसी प्रकार बुरे जन सत्संग पाकर अपने दुर्गुणों को त्याग देते हैं। बुरे मनुष्यों की संगति से गुणी भी दुर्गुणी हो जाता है। जैसे यदि सर्प को दूध पिलाया जावे तो वह दूध के पल्टे विष ही उगलेगा। ईश्वर की देनगियों में सत्संग ही एक श्रेष्ठ रत्न है इसलिये इसे अपना लेने की हमें दृढ़ इच्छा होनी चाहिये। बुरे लोगों के साथ बैठने की अपेक्षा अकेले बैठ रहना ही अच्छा है।

अच्छा आचरण बनाये रखने के लिये हमें द्रव्य की ऐश्वर्य की, अधिकार की, स्वतंत्रता की, और एक बार तन्दुरुस्ती की भी इतनी जरूरत नहीं है जितनी कि भली प्रकार से मँजी हुई आत्मशक्ति की जरूरत है।

आचरण ही हमारे जीवन का देदीप्यमान मुकुट है। इसे प्राप्त करने की हमें उत्कंठा अवश्य होनी चाहिये। यदि हमारा आचरण अच्छा और शुद्ध है तो हम ऐश्वर्य और मान अनायासप्राप्त कर सके हैं। द्रव्य सेभी इस का पद कहीं ऊँचा है। धनी आचरण हीन होने पर घृणा किया जाता

है पर ग़रीब अच्छे आचरण के कारण मान पाता है चाहे उस के अनेक मित्र नभी हों झूठ न बोलना, सदा नम्र रहना, सरल स्वभाव रखना और विश्वासनीय होना तथा अपने कर्तव्य के पालन में तत्पर रहना ही हमारे आचरण सुधारने में बहुत कुछ सहायता देते हैं।

जिस प्रकार मेज़ अथवा मूर्ति की सुन्दरता वारानिश के कारण द्विगुणित हो जाती है उसी प्रकार हमारा मानव जीवन भी अच्छे आचरणों के कारण उज्वल हो जाता है। अंग्रेज़ विद्वान 'स्लेनी' साहब का मत है कि हव जो दूसरों के अपराधों को यह समझ कर कि हम से भी नित्य प्रति ग़लतियाँ हो जाया करती हैं क्षमा करता है, और अपनी ग़लतियों के सुधारने में लगा रहता है, अपने आचरण सुधारने में कमी नहीं करता।

अच्छा आचरण एक प्रकार का ज़िरह-बख्तर है या ढाल है जिस के धारण कर लेने से हमें किसी प्रकार का भय नहीं रहता और नुक़सान पहुँचाने वाले अनायास हम पर आक्रमण नहीं कर सके। हज़ारों वर्ष का मान हमारे

एक दिन के कुमार्ग में जाने से नष्ट हो जाता है। इस लिये हमारा आचरण ऐसा हो कि लोगों के बुरा कहने परभी किसी को एका एक विश्वास नहो।

आचरण हीन मनुष्य तालाब के घास के समान है जो हवा के प्रत्येक झकोरे से डावाँडोल हो जाता है और स्थिरता नहीं रहती। मनुष्य जो धनमद या राजमद के कारण इस की परवाह नहीं करता वही फिर इसे राज या धन से हीन होजाने पर दर्पण के समान स्पष्टरूप से दिखाई देने लगता है और फिर वह अपने किये का पछतावा करने लगता है।

अँग्रेज विद्वान 'साऊदे' साहब का मत है कि हम मनुष्य का आचरण उस के व्यवहार की अपेक्षा उस के पत्रों से जाँच सके हैं। यह एक ऐसा गुण है जिस के प्राप्त करने में हमें किसी प्रकार की कमी न करना चाहिये। जिस प्रकार सुवर्ण की शोभा मणियुक्त होने से द्विगुणित हो जाती है उसी प्रकार इस देह की शोभा अच्छे आचरण युक्त होने से ही उच्च कोटि की हो जाती है।

मन में जो भले या बुरे काम करने के लिये प्रति घड़ी विचार उत्पन्न होते हैं उन्हें मनोविकार कहते हैं और यही हमें बुरे अथवा भले कर्म करने में तत्पर करते हैं और यही कर्म भले अथवा बुरे आचरण की श्रेणी में गिने जाते हैं। पहले हम इन के वशीभूत होजाते हैं परन्तु ज्यों २ हम अनुभव प्राप्त करने लगते हैं त्यों २ हम इन से दूर हटते जाते हैं। जिस प्रकार मनुष्य मदिरा के वश हो आगा पीछा नहीं सोचता उसी प्रकार हम इन के वशीभूत हो भला अथवा बुरा कर्म जो चाहे कर बैठते हैं। और ये विकार सदैव हमारे साथ लगे रहते हैं।

'बाईबिल' में लिखा है कि मनुष्य जो इन के वश हो जाता है उन जानवरों के समान है जो बिना लगाम के वश में नहीं आते। महात्मा 'भाखी' का मत है कि जिस ने अपने हृदय को बुरे विचारों से बचाया है और अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है वह उस राजा के समान है जिसने सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त की है। 'मनुजी' ने लिखा है कि जिस प्रकार कोचवान अड़ियल घोड़े को अपने वश में कर सीधी राह पर ले आता है

इसी प्राकार यदि तुम बुद्धिमान हो तो तुमभी अपने मन के बुरे विचारों को और अपनी इद्रियों को अपने वश में कर लो अन्यथा वे तुम्हें भटकाती फिरेंगी और कुमार्ग में जा ढकेलेंगी। जिस प्रकार सूर्य तम का नाश कर भोर होतेही अपना प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार यदि तुम संसार में यश चाहते हो तो अपने हृदय को अच्छे विचारों का महल बनालो और क्रोध को त्यागदो। 'रौबर्ट लिटन' का मत है कि वही स्वतंत्र है जिसने बुरे विचारों को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया।

किसी समय 'महाबली' नामक राजा किसी देशमें राज्य करता था। उसे पृथ्वी के प्रायः प्रत्येक हिस्से में जय प्राप्त हुई थी परन्तु इतने पर भी वह सन्तुष्ट न था। उसने एक दिन अपने दीवान से पूछा कि अब और कितने देश जीतने के लिये रह गये हैं। वजीर ने कहा महाराज एक प्रदेश और बच गया है और वह केवल निज मनोविकारों और इच्छाओं को ही जीतना शेष रह गया है। परन्तु यह महा दुष्कर कार्य है इसके जीतने के लिये बुद्धि और मन की एकता चाहिये यह सुन बादशाह चुप हो रहा और उस दिन से वह निज आत्म सुधार में लिप्त हो गया॥

हृदय में बुरे विचारों को स्थान देना मानों आत्मघात करना है। इसके कारण हम स्वयं दुखित हो अपने आश्रितों को भी महान कष्ट पहुँचाते हैं। कई वर्ष हुए किसी स्टेशन मास्टर ने रुपयों की लालच में पड़ कर किसी यात्री का बध करना चाहा परन्तु धोखे में आकर उसने निज पुत्र को मार डाला परिणाम यह हुआ कि उसे पुत्र और रुपये दोनों से हाथ धोना पड़ा। कुछ दिन हुए श्री वेंकटेश्वर समाचार पत्र में इसी प्रकार की एक दूसरी दुर्घटना का उल्लेख किया गया था इसका आशय इस प्रकार है। एक स्कूल मास्टर ने किसी मालगुजार के लड़के को मार डालना चाहा इस अभिप्राय से लड़के को दूर गांव में अन्य विद्यार्थियों को बुलाने भेजा। पाठशाला से यह गांव १ या दो मील की दूरी पर था। रास्ते में कुछ जंगल भी पड़ता था जब लड़का कुछ दूर पहुँचा होगा कि इतने में मास्टर सा० भी जा पहुँचे और उस लड़के से कहा कि तुम अपने कान का जेवर हमें दे दो इस पर लड़का रोने लगा और अश्रुपात कर कहने लगा—यदि मैं जेवर तुम्हें दे घर जाऊँगा तो पिता से मैं इसके खोजाने का क्या सबब बतलाऊँगा इस लिये यदि तुम चाहो तो मुझे मार डालो।

मास्टर अपने मन के बुरे विचारों को न रोक सका और इसे मार डालने पर उद्यत हुआ। बालक की आंख में पट्टी बांध कर उसे एक पत्थर पर मुँह के बल सो रहने को कहा। बालक ने वैसा ही किया और गुरुजी इसे मार डालने के लिये दूसरा पत्थर उठाने लगे कि भाग्यवशात् इस पत्थर के नीचे एक सर्प था और ज्योंही इन्होंने इस पत्थर को उठाया त्योंही सर्प इनके हाथों में लिपट रहा बालक कुछ काल तक वहीं पड़ा रहा जब बहुत देर हो गई और गुरु जी नहीं आए यह समझ बालक उठा तो देखता क्या है कि गुरु जी के हाथों पर सर्प लिपटा हुआ है यह देख बालक डर उठा और चिल्लाने लगा। बालक की आवाज़ सुन आस पास के लोग दौड़ उठे और इस रहस्य को देखा ॥

बालक को इसके पिता के पास ले गये और इससे सब हाल पूछा। परिणाम यह हुआ कि गुरु जी को जेवर और अपनी नौकरी तथा मान से हाथ धोना पड़ा और अन्त में कारावास भोगना पड़ा। इस प्रकार की कई एक घटनाएं हो चुकी हैं। इसलिये हमें उचित है कि हम अपने

हृदय को सदैव निर्मल रक्खें और बुरे विचारों का स्वप्न में भी ध्यान न करें ॥

हितोपदेश में लिखा है कि जो मनुष्य अपने मन के बुरे विचारों को नहीं रोकता और अपनी इन्द्रियों का दमन नहीं करता अपने नाश के लिये सुगम पथ को भी कंटकाकीर्ण कर लेता है। महाभारत में कहा है कि—जो सत्यवादी है, जिसने लालच, क्रोध और ईर्षा को त्याग दिया है, सर्वदा सुखी है ॥

॥ उपसंहार ॥

१. मनुष्य को प्रति दिन अपने चरित्र की आलोचना करना चाहिये कि मेरा आचरण पशु के तुल्य है किंवा सत्पुरुष के समान। २. यदि सज्जनों के बताये मार्ग पर जितना चलना चाहिये उतना नहीं चल सकते तो थोड़ाही थोड़ा चल कर आगे बढ़ने की कोशिश करो। ३. दुर्जनों से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। ४. जैसे घिसने, काटने, तापने और पीटने से सोने की परीक्षा होती है इसी प्रकार मनुष्य की जांच उसके स्वभाव, विद्या, गुण और कर्म से होती है। ५. सुशीलता, दुर्जनों की संगति, अपनी प्रशंसा और पराये की निन्दा तथा पराये द्रव्य हरण करने से विरत रहना ये सब सुजनता के लक्षण हैं। ६. रोग, शोक, सन्ताप और दुःख ये सब मनुष्यों के अपने अपराध रूपी वृक्ष के फल हैं। ७. जो मन में गर्व नहीं रखते, दूसरों की निन्दा नहीं करते, कठोर बात मुँह से नहीं निकालते, क्रोध का प्रसंग आने पर

भी क्रोध नहीं करते; और जो दूसरों के दोषों को ढूंढने की अपेक्षा सदैव उन के दोष मिटाने में लगे रहते हैं और जिन के पास क्षमा ही एक शस्त्र है वे अवश्य सज्जन हैं। (८) दूसरों के अवगुण को छिपाने वाले, दूसरों को न सताने वाले, और परोपकार तथा क्षमा करने वाले अवश्य सज्जन हैं (९) जब तुम बराबर परिश्रम करते रहोगे जो काम तुम्हें आज असाध्य जान पड़ता है कल वही सुगम हो जावेगा। (१०) निराश मत होओ कितना भी सँकट क्यों न आपड़े! (११) सदैव नम्र बने रहो और आपे से बाहर कभी मत जावो (१२) निठल्ले कभी मत बैठो अपने फुरसत का समय सदैव पुस्तकों के पढ़ने में व्यतीत करो (१३) किसी कार्य के करने में उतावली मत करो (१४) आत्म दमन सीखो और सन्देह युक्त मत बनो (१५) पद प्राप्त कर लेने पर घमंड से दूर रहो। (१६) दूसरों से बात चीत करने में सावधान रहो जिससे वे तुम्हें अपराध न लगा सकें (१७) किसी बात को ध्यान से सुन लेने पर उस का सोच समझ कर उत्तर दो। (१८) विना पूछे कभी मत बोलो (१९) दो आदमियों के बीच में

बाधक मत बनो (२०) किसी की बात छुप कर मत सुनो ऐसा करने से लोग तुम्हें चुगलखोर कहेंगे और तुम्हारा विश्वास जाता रहेगा (२१) जिस काम को तुम आज कर सके हो उसे कल पर मत छोड़ो (२२) चीजें कितनी भी सस्ती क्यों न मिलें उन्हें बिना ज़रूरत के कभी न ख़रीदो। (२३) घमण्ड को त्यागो क्यों कि वह भूख, प्यास, और ठंढ से अधिक कष्टप्रद है। (२४) किसी का द्रव्य लेकर उस का दिल मत दुखाओ (विशेष कर बिधवा स्त्रियों का) (२५) किसी को अपने से नीचा समझ उस से घृणा मत करो; सब से मीठे रहो (२६) ऐसा काम न करो जिससे तुम संसार में चोर, लबार और गँवार कहलाओ (२७) स्वामि भक्त बनो।

इति शुभम्भूयात्